भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन

विभिन्न संकलपनाएं

सम्पादक : डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन

विभिन्न संकल्पनाएँ

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चंद्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

संस्करण
प्रथम 2025

ISBN : 978 - 81 - 993854 - 7 - 4

मूल्य - 300/-

रचना -
भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन विभिन्न संकल्पनाएँ

सम्पादक -
डॉ. दिनेश चंद्र शर्मा

आवरण -
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक -
श्री श्याम ऑफसेट, किशनगढ़

आर्य मार्त्तण्ड के संदर्भ में - राजस्थान में राजनीतिक सुधार

रतनलाल कुमावत
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती सत्य के सच्चे अन्वेषक थे। उन्होंने समाज, धर्म और राजनीति में व्याप्त अन्याय व असत्य का विरोध किया तथा हर क्षेत्र में सत्य की प्रतिष्ठा को ही अपना जीवन-लक्ष्य बनाया। स्वामी दयानन्द के विचारों का प्रभाव केवल धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों तक सीमित नहीं रहा, अपितु उसने राजस्थान की राजनीति और वहाँ होने वाले सुधार आंदोलनों को भी प्रभावित किया।

आर्य समाज के समाज-सेवकों, कार्यकर्ताओं और विचारकों ने स्वामी दयानन्द के दिखाए मागज़ पर चलते हुए राजनीति की स्थिति पर भी विचार किया। उनके द्वारा निकाली गई पत्र-पत्रिकाओं ने राजनीतिक चेतना जगाने में विशेष योगदान दिया। इनमें 'आर्य मार्तण्ड' का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। इस पत्र में प्रकाशित लेखों ने राजस्थान के राजनीतिक जीवन को न केवल प्रभावित किया बल्कि जनता का ध्यान राजनीति में चल रहे अनुचित कार्यों की ओर भी आकृष्ट किया।

आर्य मार्तण्ड का उद्देश्य सीधे राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेना नहीं था। इसके लेखक और विचारक मूलत: न तो राजनीतिज्ञ थे और न ही राजनीतिक विचारक। उनका ध्येय समाज में फैली बुराईयों को दूर करना और उसे नैतिक व सांस्कृतिक रूप से श्रेष्ठता की ओर अग्रसर करना था। लेकिन जब समाज में नैतिक बल उत्पन्न होता है तो वह स्वाभाविक रूप से राजनीतिक जीवन को भी प्रभावित करता है। इसी प्रकार आर्य मार्तण्ड ने अप्रत्यक्ष रूप से राजस्थान की राजनीति को प्रभावित किया।

पत्र-पत्रिका में प्रकाशित लेखों द्वारा शासकों के अन्याय, प्रजा पर अत्यधिक कर-भार, भ्रष्टाचार और शोषण की आलोचना की गई। इससे जनता को यह अनुभव हुआ कि शासन-प्रशासन को केवल बल और निरंकुशता के आधार पर नहीं, बल्कि धर्म, न्याय और प्रजा-हित के आधार पर चलना चाहिए। यह विचार धीरे-धीरे राजस्थान की राजनीतिक चेतना का आधार बना।

राजस्थान के विभिन्न भागों—जैसे जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और अजमेर—में आर्य समाज की शाखाएँ सक्रिय हुईं। इन शाखाओं ने शिक्षा का प्रचार किया, अंधविश्वासों और कुरीतियों के विरोध में आवाज उठाई और जनता को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया। इसका सीधा प्रभाव यह हुआ कि जब-जब प्रजामंडल आंदोलन या किसान आंदोलनों ने जन्म लिया तो उनमें आर्य समाज की विचारधारा और पत्र-पत्रिकाओं से मिली प्रेरणा स्पष्ट रूप से दिखाई दी।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आर्य मार्तण्ड ने राजस्थान में केवल धार्मिक या सामाजिक सुधार तक अपने प्रभाव को सीमित नहीं रखा, बल्कि उसने राजनीतिक सुधार की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उसने जनता में नैतिक बल पैदा किया, शासकों के कर्तव्यों की याद दिलाई और राजनीति में न्याय तथा उत्तरदायित्व की भावना को प्रबल किया।

राजनीति मानव समाज का एक अभिन्न अंग है। जब-जब समाज के उत्थान के मार्ग में बाधाएँ आईं, तब-तब सुधारकों ने उन बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया। आर्य समाज के विचारकों और लेखकों का मूल कार्यक्षेत्र धर्म और समाज रहा, किन्तु राजनीति समाज का ही एक महत्वपूर्ण हिस्सा होने के कारण उन्होंने उस पर भी विचार किया। आर्य समाजी लोग तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति पूर्णत: जागरूक थे। इसलिए राजनीति से वे पूरी तरह पृथक नहीं रह सके। उन्होंने अपने विचारों और लेखनी के माध्यम से राजनीतिक प्रश्नों पर भी प्रकाश डाला। आर्य समाजियों ने जो कुछ भी आर्य मार्त्तण्ड पत्र में लिखा, उसे उनके राजनीतिक विचारों का संगठित रूप माना जा सकता है।

अंग्रेजी सत्ता ने अपने को जनतंत्र और आत्मनिर्णय का समर्थक बताने का ढोंग किया, किन्तु उसकी गतिविधियाँ वस्तुत: साम्राज्यवादी और जनतंत्र-विरोधी थीं। लॉर्ड वेलेजली की सहायक संधि ने अनेक भारतीय राज्यों की स्वतंत्रता समाप्त कर दी। लॉर्ड डलहौजी की लैप्स नीति ने दत्तक परंपरा को अवैध मानकर अनेक राज्यों का विलय कर लिया। अंग्रेज प्रशासकों ने मैत्री का मुखौटा पहन रखा था, परंतु उनकी नीतियों का आधार धोखाधड़ी और बहानेबाजी था। धीरे-धीरे स्वतंत्र भारतीय राज्य अंग्रेजी शासन के अधीन होते गए और शासक वर्ग तथा जनता में असंतोष फैलने लगा।

धार्मिक और शैक्षणिक संस्थाएँ, विद्वान तथा विशेष सुविधाएँ पाने वाले वर्ग अंग्रेजी शासन में अपना संरक्षण खो बैठे। अवध क्षेत्र में ईनाम आयोग की नीतियों ने बड़े-बड़े जागीरदारों और ताल्लुकदारों को समाप्त कर दिया। किसानों पर भारी लगान का बोझ था। न्याय पाने की कानूनी प्रक्रिया जटिल और खर्चीली थी, जिससे किसान और जमींदार दोनों ही परेशान रहते थे। नई पुलिस व्यवस्था में व्यक्तिगत सम्पर्क समाप्त

हो गया था और अंग्रेज शासक शासन के अभिमान से ग्रस्त थे।

शासन की भाषा के रूप में अंग्रेजी लागू कर दी गई। फारसी और जनभाषाएँ पीछे धकेल दी गईं। भारतीयों को शासन में ऊँचे पद नहीं दिए जाते थे। अधिक से अधिक उन्हें डिप्टी कलेक्टर या मजिस्ट्रेट का पद मिल सकता था। इससे अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर महत्वाकांक्षा रखने वाले शिक्षित भारतीय भी असंतुष्ट हो गए। शासन की समस्त शक्ति गवर्नर जनरल और उसकी अंग्रेज परिषद के हाथों में केंद्रित थी। इस प्रकार जनता और सरकार के बीच दूरी बहुत बढ़ गई थी। ऐसी परिस्थिति में आर्य मार्त्तण्ड ने अपने लेखों के द्वारा इन अन्यायपूर्ण नीतियों की आलोचना की। इस पत्र ने समाज का ध्यान अंग्रेजी सत्ता की विसंगतियों की ओर आकर्षित किया। उसने जनता को बताया कि अंग्रेजी शासन का आधार न्याय और प्रजा-हित नहीं, बल्कि शोषण और साम्राज्य विस्तार की नीति है। आर्य मापतण्ड ने यह भी स्पष्ट किया कि यदि समाज नैतिक दृष्टि से सशक्त बनेगा तो वह राजनीतिक दमन का विरोध करने में सक्षम हो सकेगा।

अंग्रेजी शासन के समय सेना में भी व्यापक असंतोष व्याप्त था। इसका मूल कारण अंग्रेजों द्वारा भारतीय सैनिकों और उनके राजाओं के साथ किया गया दुव्यज्वहार था। अंग्रेज सैनिकों की अपेक्षा भारतीय सैनिकों को कम वेतन और सुविधाएँ दी जाती थीं। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों की नीतियों ने सैनिकों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाई। इन सब कारणों से सेना में रोष और विद्रोह की भावना तीव्र होती गई, जिसका परिणाम 1857 की महान स्वतंत्रता क्रान्ति के रूप में सामने आया।

उन्नीसवीं शताब्दी को परिवर्तन और आशा की शती कहा जा सकता है। इस काल में विश्व की सभ्यता और संस्कृति एक नए स्वरूप का निर्माण कर रही थी। औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप विज्ञान, शिक्षा, समाज, व्यापार और राजनीति में व्यापक परिवतज्न उत्पन्न हुए। समाज की संरचना आन्दोलित हुई और नये विचार-विमशज़ को स्थान मिला।

लोगों के वैचारिक क्षेत्र में तर्क और व्यक्तिवाद ने महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया। विश्व और समाज के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगे। राष्ट्रीय स्वाधीनता और जनतंत्र के आंदोलन बल पकड़ने लगे। धार्मिक पुनर्जागरण भी इन्हीं परिवर्तनों का एक अंग था। इस शताब्दी में अनेक विचारधाराओं ने जन्म लिया, जिनका प्रभाव पूरी दुनिया पर पड़ा। मार्क्स और एंगेल्स का साम्यवाद इसी काल की देन था। साथ ही अराजकतावादी विचारधारा ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। इन विचारों ने राजनीति, समाज, अर्थव्यवस्था और संस्कृति को प्रभावित किया। कला और साहित्य पर भी इन नई धाराओं का गहरा असर हुआ। भारत भी इन परिवर्तनों से अछूता नहीं रहा। यद्यपि इन विचारधाराओं का जन्म यूरोप में हुआ, परंतु इनके प्रचार-प्रसार के साथ-साथ यूरोपीय सभ्यता और

संस्कृति का प्रसार एशिया और विशेषकर भारत में हुआ।

भारत में परिवर्तन का संदेश सबसे पहले बंगाल के माध्यम से पहुँचा। बंगाल अंग्रेजी शिक्षा, यूरोपीय सभ्यता और ईसाई मत के प्रभाव में सवज़्प्रथम आया। अंग्रेजों की नीतियों ने बंगाल के समाज को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। बंगाल का शोषण और लूट इंग्लैंड की औद्योगिक क्रान्ति का आधार बना। इंग्लैंड की आर्थिक प्रगति के पीछे भारत, विशेषकर बंगाल की संपदा और संसाधनों का दोहन प्रमुख कारण था।

आर्य समाज की स्थापना का उद्देश्य केवल धार्मिक और सामाजिक सुधार तक सीमित नहीं था, बल्कि इसके संगठन, सिद्धांतों, चुनाव एवं कार्यप्रणाली में राजनीतिक व्यवस्था की झलक भी मिलती है। आर्य समाज के लेखकों ने अपने राजनीतिक विचारों में राजतंत्र और प्रजातंत्र का एक प्रकार का मिश्रण प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि राजतंत्र में भी निर्वाचन की प्रणाली अपनाई जानी चाहिए ताकि शासन केवल निरंकुश न होकर जनता की भागीदारी पर आधारित हो।

आर्य समाजियों के राजनीतिक विचारों में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व जैसे आदर्श स्पष्ट दिखाई देते हैं। उन्होंने हर प्रकार के निरंकुश शासन का विरोध किया और शासन को नैतिकता एवं जनहित पर आधारित बनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

तत्कालीन परिस्थितियों में आर्य समाज के विचारकों ने अनुभव किया कि भारत का हिन्दू धमज़् निरंतर पतन की ओर बढ़ रहा है। उनका मानना था कि यदि राष्ट्र को पुन: जीवित और सशक्त करना है, तो उसे उसके गौरवशाली अतीत के आधार पर खड़ा करना होगा। इसके लिए वैदिक धर्म का पुनरुत्थान अनिवार्य है। उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद की नींव वैदिक धर्म और संस्कृति पर रखने का विचार प्रस्तुत किया।

आर्य समाजी नेता श्री हरविलास शारदा ने समाज और जनता के उत्थान के लिए ठोस प्रस्ताव भी प्रस्तुत किए। उन्होंने असेम्बली में निम्न विषयों पर सुझाव दिए—

(1) सरकार अजमेर, ब्यावर और पुष्कर में आवश्यक प्राथमिक शिक्षा का शीघ्र प्रबंध करे।

(2) अजमेर-मेरवाड़ा के हाई और प्राइमरी स्कूलों के विद्यार्थियों की डाक्टरी परीक्षा समय-समय पर होती रहे, इसके लिए सरकार उचित व्यवस्था करे।

(3) चूँकि राजपूताना में बोर्ड ऑफ इंटरमीडिएट एंड हाई स्कूल एजुकेशन स्थापित होने वाला है, अत: अजमेर-मेरवाड़ा के लिए एक सुपरिटेंडेंट ऑफ एजुकेशन की नियुक्ति आवश्यक है।

(4) अजमेर के विक्टोरिया हॉस्पिटल को सरकार अपने हाथ में लेकर सुचारु रूप से चलाए।

(5) अजमेर-मेरवाड़ा में दीवानी शहर कोर्ट फीस अत्यधिक है। इसलिए सरकार

यहाँ भी उत्तर प्रदेश की तरह शहर कोर्ट फीस की प्रणाली लागू करे।

9 फरवरी 1928 को अंग्रेजी सरकार ने भरतपुर राज्य के महाराजा किशनसिंह को उनके पद से हटा दिया और अल्पवयस्क उत्तराधिकारी बृजेन्द्र सिंह को नया शासक नियुक्त कर दिया। चूँकि उत्तराधिकारी की आयु कम थी, इसलिए वास्तविक शासन की बागडोर ब्रिटिश दीवान मैकेंजी को सौंप दी गई। मैकेंजी ने आते ही शासन विधान समिति को समाप्त कर दिया और सार्वजनिक कार्यकर्ता जगन्नाथ दास अधिकारी को राज्य से निष्कासित कर दिया। इसके साथ ही सभा, लेखन और प्रकाशन आदि पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया।

इससे पूर्व, 15 अप्रैल 1927 को किसानों के असन्तोष के कारण सरकारी दमन-चक्र के विरोध में सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया गया। इन सभाओं में देश के बड़े नेता जैसे पंडित मदनमोहन मालवीय और चांदकरण शारदा भी सम्मिलित हुए। इससे स्पष्ट है कि भरतपुर राज्य की राजनीतिक गतिविधियाँ तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ चुकी थीं।

28 दिसम्बर 1928 को भरतपुर में 'आर्य पुकार सम्मेलन' का आयोजन हुआ जिसकी अध्यक्षता इन्द्र विद्यावाचस्पति ने की। इस सम्मेलन में भरतपुर के निरंकुश शासन के विरुद्ध सत्याग्रह करने तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बल दिया गया। इस सम्मेलन के जुलूस, प्रभात फेरियाँ और वैदिक भजनों ने जनता को गहराई से आकर्षित किया। लेकिन अंग्रेज शासकों को यह स्वीकार्य नहीं था। 1929 में मैकेंजी ने आदेश पारित कर आर्य समाज के सभी धार्मिक कार्यों पर प्रतिबंध लगा दिया और यह घोषणा की कि राजकीय नौकरी में कार्यरत कोई भी कर्मचारी यदि आर्य समाज से जुड़ा पाया जाएगा तो उसे तुरंत बर्खास्त कर दिया जाएगा। इस कदम ने राज्य का वातावरण और अधिक तनावपूर्ण बना दिया और विरोध की लहर को और तेज कर दिया।

इस काल में समाज सुधार की दिशा में भी महत्वपूर्ण घटनाएँ घटीं। बाल-विवाह प्रतिबंधक बिल, जिसे सामान्यत: 'शारदा बिल' कहा गया, पिछले दो वर्षों से चर्चा का विषय था। अंतत: 23 सितम्बर 1929 को इसे असेम्बली ने स्वीकार कर लिया। अब यह निश्चित हो गया था कि शीघ्र ही यह कौंसिल ऑफस्टेट से भी स्वीकृत होकर वायसराय की मंजूरी से कानून बन जाएगा।

शारदा जी ने प्रस्ताव रखा था कि हिन्दू समाज में 12 वर्ष से कम आयु की बालिका और 16 वर्ष से कम आयु के बालक का विवाह निषिद्ध माना जाए। बिल असेम्बली में प्रस्तुत किया गया और फिर सिलेक्ट कमेटी को सौंपा गया। कमेटी में दो महत्वपूर्ण संशोधन किए गए—

(1) यह कानून केवल हिन्दुओं तक सीमित न होकर ब्रिटिश भारत में विवाह

करने वाले किसी भी व्यक्ति पर लागू होगा।

(2) विवाह योग्य आयु लड़कों के लिए 18 वर्ष और लड़कियों के लिए 14 वर्ष कर दी गई।

जनवरी 1929 में भरतपुर पीपुल्स एसोसिएशन की एक राजनीतिक बैठक आयोजित की गई, जिसमें यह निश्चय किया गया कि वर्ष 1929 का अधिवेशन भरतपुर में ही किया जाएगा। यह निर्णय वहाँ की जनता और कार्यकर्ताओं की बढ़ती राजनीतिक चेतना का द्योतक था। किंतु अंग्रेज सरकार इस प्रकार की गतिविधियों से सतर्क हो चुकी थी। परिणामस्वरूप, 9 मार्च 1929 को सरकार ने भरतपुर में प्रदर्शन, जुलूस और राजनीतिक सम्मेलनों पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया।

राष्ट्रीयता की क्रांतिकारी लहर में आर्य समाज जैसी धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं का बह जाना चिंतनीय समझा गया। आर्य समाज के कर्णधारों को इस उथल-पुथलकारी समय में अत्यधिक सावधानी से कार्य करने की आवश्यकता महसूस हुई। आर्य समाज का संगठन विशेष रूप से उल्लेखनीय था। यद्यपि प्रत्येक आर्य समाज अपनी शिरोमणि सभा के अधीन था, परन्तु उसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता भी थी। यदि उस समय की कांग्रेस का संगठन प्रांतीय प्रतिनिधियों के आधार पर गठित था, तो आर्य समाज ने उससे कहीं पहले प्रतिनिधित्व की परंपरा अपने ढांचे में सम्मिलित कर ली थी। आर्य समाज के प्रतिनिधि बिकाऊ नहीं होते थे, बल्कि धार्मिक निष्ठा और धमज़्सेवा के बदले जनता उन्हें अपना सहयोग देती थी। यही कारण था कि आर्य समाज का संगठन वास्तविक अथोज़् में कांग्रेस की तुलना में अधिक जनतंत्रवादी माना जाता था।

आर्य समाज यदि भारत में सच्चे स्वतंत्र जनतांत्रिक शासन की स्थापना में सहयोग करना चाहता था, तो उसका दायित्व था कि वह आचार, चरित्र, ईमानदारी और सिद्धांतप्रियता की शिक्षा देकर जनता को यह पाठ पढ़ाए कि प्रतिनिधित्व कभी पैसे से खरीदा नहीं जा सकता। इस प्रकार धार्मिक संगठन होते हुए भी आर्य समाज राजनीतिक चेतना और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। 10 जनवरी 1930 को आर्य समाज के नेताओं जुगल किशोर और आदित्येन्द्र ने ''राष्ट्रीय युवक दल'' का गठन किया। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य युवकों को संगठित कर ब्रिटिश शासन की नीतियों का विरोध करना था। इस दल ने युवाओं में जोश और साहस भरने का कार्य किया।

26 जनवरी 1930 को जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वतंत्रता दिवस मनाने का आह्वान किया, तब जुगल किशोर चतुर्वेदी ने भरतपुर के आर्य समाज भवन के पीछे गुप्त रूप से स्वतंत्रता दिवस का आयोजन किया। उन्होंने तिरंगा झंडा फहराया और खादी प्रचार के पर्चे बाँटे। इस घटना ने भरतपुर में राष्ट्रीय चेतना को और गहराई दी। किंतु

ब्रिटिश सरकार ने इसे विद्रोहात्मक गतिविधि मानते हुए जुगल किशोर और उनके साथियों को गिरफ्तार कर लिया।

26 जनवरी की घटना के बाद सरकार ने और कठोर कदम उठाए। 28 जनवरी 1930 को आदेश जारी कर सभी प्रकार के प्रदर्शन, जुलूस, प्रभात फेरियों, पुस्तकालयों और वाचनालयों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इतना ही नहीं, स्कूलों को मिलने वाली अनुदान राशि भी बंद कर दी गई। इस प्रकार भरतपुर राज्य में आयज़ समाज और उससे जुड़ी राष्ट्रीय गतिविधियाँ सरकार के निशाने पर आ गईं।

इस काल में पूरे देश में राष्ट्रीय आंदोलन पुनः जोर पकड़ चुका था। आर्य समाजियों के लिए यह स्वाभाविक था, क्योंकि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उन्हें उदारता और स्वतंत्रता की शिक्षा दी थी। आर्य समाज में पढ़े-लिखे, जागरूक और सक्रिय लोगों का बहुल्य था, इसलिए जब-जब स्वतंत्रता की लहर उठी, तब-तब आर्य पुरुषों ने अग्रणी भूमिका निभाई। आर्य साहित्य—पुराणों से लेकर सत्यार्थ प्रकाश तक—में आर्यवर्त की गौरवपूर्ण प्रशंसा मिलती है। आर्य समाजियों ने बार-बार यह प्रमाणित किया कि उनकी स्वदेशभक्ति सहज और प्रकृति-सिद्ध है। स्वामी श्रद्धानन्द का कथन इस बात को पुष्ट करता है कि असहयोग आंदोलन के समय राष्ट्रीय महासभा का ध्वज उठाने वालों में 76 प्रतिशत आर्य समाजी ही थे।

राजस्थानियों की प्रतिनिधि संस्था 'राजपूताना मध्य भारत सभा' का 30वाँ अधिवेशन 6 नवम्बर को पुष्कर में कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा पर बड़े धूमधाम से आयोजित हुआ। इस अधिवेशन की अध्यक्षता वैद्यराज प्रो. कल्याण सिंह ने की। सभा में दो प्रमुख विषयों पर जोर दिया गया—

(1) हिंदू धर्म पर हो रहे अत्याचार - मुसलमानों द्वारा किए गए अन्याय और धामिज़्क अनाचारों का चित्रण।

(2) देशी रियासतों में जनता पर हो रहे अत्याचार - वहाँ की प्रजा की दुर्दशा और शोषण की स्थिति।

सभा ने स्पष्ट घोषणा की कि देशी राज्यों की प्रजा को अपने कष्टों का अंत करने के लिए उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की माँग करनी चाहिए। इसके लिए उन्हें निर्भय होकर बलिदान देने के लिए तैयार रहना चाहिए।

राजस्थान व मालवा आर्य प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन अजमेर में आयोजित हुआ। इस अधिवेशन में अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए। लेकिन सबसे उल्लेखनीय था धर्म-प्रचार की दृष्टि से किया गया एक क्रांतिकारी निर्णय। यह निश्चय किया गया कि 1 अप्रैल 1932 को स्वामी दयानन्द सरस्वती की निर्वाण-अर्धशताब्दी मनाई जाएगी।

विगत सात वर्षों से इस विषय पर विचार हो रहा था, किंतु कुछ नेता 'मृत्यु-

शताब्दी' मनाने के पक्ष में नहीं थे। अंततः सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि इसे 'दयानन्द निर्वाण अर्धशताब्दी' के रूप में आयोजित किया जाए।

इस आयोजन को लेकर विभिन्न आर्य समाजों में मतभेद भी रहे। परोपकारिणी सभा और वैदिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने मिलकर यह निर्णय लिया कि अर्धशताब्दी 1933 की दीपावली पर अजमेर में मनाई जाएगी। जबकि आर्य समाज केसरगंज ने इसका आयोजन फरवरी 1933 में करने का निश्चय किया। फिर भी यह स्पष्ट किया गया कि यह आयोजन केवल किसी क्षेत्रीय सभा का नहीं, बल्कि सम्पूर्ण आर्य समाज का उत्सव है। आयोजन की जिम्मेदारी परोपकारिणी सभा और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने अपने हाथ में ली। इन संस्थाओं के मुखपत्र आर्य मार्त्तण्ड ने भी इसे प्रचारित किया। 21 अक्टूबर 1932 से ही दयानन्द अर्धशताब्दी समारोह की तैयारियाँ राजनीतिक स्तर पर बड़े जोर-शोर से शुरू कर दी गईं। इस आयोजन को केवल धार्मिक या सांस्कृतिक न मानकर राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने का एक अवसर भी समझा गया। इससे जनता में संगठन, स्वाभिमान और स्वतंत्रता के लिए त्याग की भावना को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया गया।

आर्य समाज के गठन के प्रारंभिक समय से ही इसमें विचार-स्वतंत्रता की धारा प्रवाहित होती रही। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्वयं समाज को मानसिक स्वतंत्रता प्रदान की थी और उनके पश्चात् कई दशकों तक समाज के भीतर सिद्धान्तों पर व्यापक चर्चाएँ होती रहीं। विचारों की यह खुली परम्परा ही आर्य समाज की सबसे बड़ी शक्ति मानी जाती है।

वर्तमान विचार-स्वातन्पय आन्दोलन का सूत्रपात पं. सातवलेकर जी के लेखों से माना जाता है। उन्होंने वैदिक धर्म पर गम्भीर लेख लिखकर आर्यों को वेदप्रेमी बनाया। गुरुकुल कांगड़ी और लाहौर में उनके प्रयासों से आर्यों में वैदिक संस्कृति और वेदाध्ययन के प्रति गहरी लगन उत्पन्न हुई। लेकिन बाद में सातवलेकर जी अपने विचारों में कुछ हद तक आर्य समाज की मूलधारा से भटक गए। उन्होंने त्रिकाल-संध्या का प्रतिपादन किया और सूर्य-नमस्कार को व्यायाम रूप में स्वीकार किया। ये विचार आर्य समाज की परम्परा से अलग माने गए और उनके लेख प्रायः विवाद का विषय बनने लगे।

उस समय आम जनता का ध्यान अन्य राष्ट्रीय आन्दोलनों की ओर खिंचा हुआ था, जिससे हिन्दुओं में संगठित होने की कमी बनी रही। जब तक 'हिन्दुत्व' का कोई सर्वमान्य लक्षण तय नहीं हुआ, तब तक हिन्दू संगठन की नींव मजबूत नहीं हो पाई। आर्य समाज में यदि विचारों की एकरूपता न रहे और उसमें भ्रम या धांधली फैल जाए, तो संगठन भी कमजोर पड़ सकता है। क्योंकि प्रत्येक संगठन कुछ नियमों और मर्यादाओं पर आधारित होता है।

आर्य समाज का मूलभूत सिद्धान्त यह रहा है कि आचार और विचार दोनों आवश्यक हैं। जैसे सदाचार संस्था की नींव है, वैसे ही सद्विचार उसका प्राण हैं। आचार प्राय: विचारों का अनुसरण करता है। इसीलिए आर्य समाज की पूरी इमारत सदाचार और सद्विचार की मजबूत भित्तियों पर खड़ी हुई है।

आर्य समाज की आंतरिक कलह का एक बड़ा कारण 'अधिकारवाद' माना गया। जब कुछ लोग केवल अधिकारों की चाह में संगठन को चलाने लगते हैं, तो आदर्शवाद का गला घुट जाता है। अधिकारवाद ने समाज में दलबन्दी को जन्म दिया और आपसी कलह को बढ़ाया।

महर्षि दयानन्द का मिशन न तो किसी प्रकार की सल्तनत स्थापित करना था और न ही स्थायी पद या अधिकार की राजनीति करना। उनका लक्ष्य तो आदर्शवाद और त्याग पर आधारित समाज की रचना करना था। लेकिन अधिकारप्रियता ने त्याग की भावना को कम कर दिया और परिणामस्वरूप आर्य समाज की भव्य इमारत में दरारें दिखाई देने लगीं।

वैदिक काल में आर्य समाज का प्रत्येक व्यक्ति आदर्शवाद का उपासक था। यही कारण था कि आर्य सभ्यता केवल भारत में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी पूज्य बनी। आर्य समाज की सच्ची धरोहर आदर्शवाद है, अधिकारवाद नहीं। आज की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि समाज में अधिकारों की आवश्यकता के साथ-साथ त्याग और आदर्श को बनाए रखा जाए। यदि अधिकारवाद पर अंकुश न लगाया गया तो दलबन्दी और कलह समाज की एकता और उसके पवित्र मिशन को कमजोर कर देंगे।

मार्च 1935 में गोरीशंकर ने भरतपुर में खादी भण्डार खोलकर खादी प्रचार का कार्य आरम्भ किया। उन्होंने गाँधी टोपी के प्रचलन को भी बढ़ाया। लेकिन तत्कालीन रियासत में खादी टोपी पहनना राजद्रोह के समान माना गया। परिणामस्वरूप 25 जुलाई 1935 को जीवनलाल आर्य और जगन्नाथ प्रसाद को केवल खादी टोपी पहनने के अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया। इसके अतिरिक्त, खादी और स्वदेशी के प्रचार में सक्रिय गौरीशंकर गोकुल वर्मा और घनश्याम आर्य को तीन-तीन महीने का कारावास भुगतना पड़ा। इससे पूर्व 1933 में ही आर्य समाज को अपने वार्षिकोत्सव मनाने की अनुमति नहीं दी गई थी। यह घटनाएँ दर्शाती हैं कि आर्य समाज केवल धार्मिक सुधार में ही नहीं, बल्कि राष्ट्रीय चेतना और स्वदेशी आन्दोलन के अग्रदूतों में भी सम्मिलित था।

आर्य समाज के बड़े नेता हों या सामान्य सदस्य, सभी यह अनुभव करने लगे कि संस्था अधोगति की ओर अग्रसर है। समाज के मंचों से, अखबारों से, गुरुकुलों से, विद्यालयों और आश्रमों से, यहाँ तक कि निजी बैठकों और सभाओं से भी एक ही स्वर

निकलने लगा कि आर्य समाज अपने मूल उद्देश्यों से विचलित हो रहा है।

प्रतिनिधि सभाओं की रचना का उद्देश्य संगठन को सुव्यवस्थित करना और प्रचार में गति लाना था। परन्तु इन सभाओं को चलाने वाले नेताओं ने संगठन के प्रति निष्ठा छोड़कर केवल अपनी सुविधा को प्राथमिकता दी। परिणामस्वरूप आर्य समाजियों में भी प्रांतीयता की भावना घर करने लगी। वे स्वयं को पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती अथवा पूर्वी कहकर गर्व अनुभव करने लगे और आर्य समाज की वेदी पर भी इन प्रांतीय पहचानों की माला सजाने लगे। इस प्रकार संगठनात्मक एकता की जगह प्रांतीय स्वार्थ की भावना हावी हो गई।

जब भी संगठनात्मक असफलता सामने आती है तो प्राय: उसे आर्य समाज के नाम पर डाल दिया जाता है। लेकिन वस्तुत: दोष आर्य समाज के सिद्धान्तों या संगठनात्मक ढाँचे में नहीं है। आर्य समाज के सिद्धान्त इतने ठोस और सुदृढ़ हैं कि उन्हें किसी व्यक्ति या संस्था की असफलता के आधार पर दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

वास्तव में असफलता की जिम्मेदारी उन्हीं व्यक्तियों की है जो सामान्य परिस्थितियों में सफलता का श्रेय प्राप्त करते हैं। आर्य समाज किसी एक भवन, स्कूल, कॉलेज या संस्था का नाम नहीं है, जिसे केवल रूप-रंग या ढाँचे के आधार पर पहचाना जा सके। यह तो एक उच्च आदशज़ है, जो व्यक्तियों और संस्थाओं से ऊपर है।

आर्य समाज का मूल आधार उसके सिद्धान्त हैं, जिन्हें समय, परिस्थिति या स्वार्थ के अनुसार तोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता। परिस्थितियाँ चाहे कितनी ही विपरीत क्यों न हों, आयज़ समाज अपने सिद्धान्तों के बल पर हर तूफान का सामना कर सकता है और अपने निश्चित मार्ग पर आगे बढ़ सकता है। इसलिए यदि कहीं असफलता दिखाई देती है तो उसका कारण सिद्धान्तों की कमजोरी नहीं, बल्कि उनका पालन करने वालों की दुर्बलता, अधिकारप्रियता और प्रांतीय स्वार्थ है।

15 अप्रैल 1937 को जगन्नाथ कक्कड़ और गोकुल वर्मा ने भरतपुर कांग्रेस कमेटी की स्थापना की। इस साहसिक कदम के परिणामस्वरूप दोनों नेताओं को गिरफ्तार कर उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और डेढ़ वषज़ का कारावास दिया गया। 25 जनवरी 1938 को आर्य कन्या पाठशाला, आर्य समाज के पुस्तकालयों और वाचनालयों की तलाशी ली गई। सरकार ने इन्हें राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बताते हुए सील कर दिया। यह घटना इस बात का प्रमाण है कि आर्य समाज की शिक्षण और सांस्कृतिक संस्थाएँ केवल धार्मिक ही नहीं, बल्कि राष्ट्रवादी चेतना का भी पोषण कर रही थीं। इसी वर्ष 1938 में गोपीलाल यादव, रेवती शरण, कुन्दनलाल जोशी, आदित्येन्द्र और जुगल किशोर चतुर्वेदी जैसे आर्य समाजियों ने भरतपुर राज्य प्रजामण्डल की स्थापना की। किन्तु इस कदम का राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा ने विरोध किया।

5 मार्च को देशभक्त चांदकरण शारदा ने 100 वीर सत्याग्रहियों के साथ निजाम राज्य के गुलबर्गा में सत्याग्रह किया। स्टेशन पर पहुँचते ही पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। पुलिस ने समझाया कि वे लौट जाएँ, लेकिन सत्याग्रहियों ने इंकार कर दिया। गिरफ्तारी से पूर्व एक वैदिक हवन का आयोजन किया गया। इस अवसर पर 100 वीर सत्याग्रही केसरिया टोपी पहने हुए उपस्थित थे। हवन के बाद वैदिक धर्म की जय के नारों से वातावरण गूंज उठा। यह दिन संयोग से होली का पवित्र त्यौहार था, इसलिए इस रस्म ने और भी धार्मिक-राष्ट्रीय स्वरूप ले लिया। चांदकरण शारदा की विजय आरती उतारी गई और उन्होंने संदेश दिया कि जब तक निजाम सरकार धार्मिक स्वत्व सम्मानपूर्वक वापस नहीं करती, तब तक यह संघर्ष जारी रहेगा। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि यह सत्याग्रह सत्य और अहिंसा पर आधारित है।

भाग्य नगर (हैदराबाद) के धर्मयुद्ध में आर्य-हिन्दू जनता ने विजय प्राप्त की। इसने यह सिद्ध कर दिया कि सत्य और अहिंसा की शक्ति आज भी अटूट है। सफल सत्याग्रह ने यह संदेश दिया कि जब तक मानवता जीवित है, तब तक सत्य और अहिंसा निराश नहीं कर सकते। आवश्यकता केवल इस बात की है कि यह शक्ति गंगा-जमुना की धारा की भाँति गंभीर और स्वाभाविक गति से बहती रहे।

आर्य-हिन्दू जनता प्राचीन काल से ही त्याग, तप और बलिदान की पुजारी रही है। उसके सामने व्यक्ति या संस्था का महत्व नहीं, बल्कि आदर्श और बलिदान सर्वोपरि रहा है। अजमेर नगर में हुए एक स्वागत समारोह में यह भावना और भी प्रकट हुई। वहाँ अनेक राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक नेता उपस्थित थे। चांदकरण शारदा स्वयं केवल एक विजयी सत्याग्रही के रूप में नहीं आए थे, बल्कि उनके साथ सप्तम सवाज़धिकारी पं. ज्ञानेन्द्र जी भी थे। अजमेर की जनता ने उन वीर सत्याग्रहियों का स्वागत किया जिन्होंने जेल की कठिन यातनाएँ सहन कर समाज और राष्ट्र का मस्तक ऊँचा किया था। यह आयोजन त्याग और बलिदान की उस धारा का प्रतीक था, जिसने आयज़ समाज और राष्ट्रीय आन्दोलन को सशक्त किया।

स्वतंत्रता संग्राम की आंधी में जब-जब आर्य समाजियों ने सत्याग्रह और बलिदान दिया, तब-तब उन्हें समाज की सहानुभूति और देश का समर्थन मिला। जनता आर्य समाज के त्याग और तप की सराहना करती रही। अब आवश्यकता केवल इस बात की थी कि आर्य समाज अपने रचनात्मक कार्यक्रमों को जारी रखता। सार्वदैशिक सभा के प्रधान बाबू घनश्याम सिंह गुप्त ने विशेष अपील प्रकाशित की थी कि विजय दिवस पर पारित प्रस्तावों को केवल पढ़कर ही न छोड़ दिया जाए, बल्कि अगले ही दिन से उन्हें कार्यरूप में परिणित किया जाए। परन्तु हुआ यह कि विजय दिवस मनाने के बाद अनेक आर्य समाज शिथिल पड़ गए और मानो अपना कर्तव्य पूर्ण समझ लिया। जबकि अपेक्षा

यह थी कि विजय की इस लहर को आगे बढ़ाकर संगठन और समाज को और सशक्त किया जाता। आर्य समाज की विजय ने उसे व्यापक प्रचार और प्रतिष्ठा दिलाई थी। यदि इस गति को जारी रखा जाता, तो निश्चय ही हर कदम पर सफलता मिलती। जहाँ सच्ची निष्ठा और लोकसेवा की भावना होती है, वहाँ धन और सहयोग की कभी कमी नहीं रहती। देश के बड़े-बड़े सम्पन्न और भावुक व्यक्तियों की भी यही लालसा रहती थी कि उनका धन समाज और संसार के कल्याण में लगे। इसलिए आर्य समाज के सामने अवसर था कि वह अपनी धार्मिक संस्कृति और लोकसेवा की शिक्षा को रचनात्मक कार्यों में परिणित करता। इस दिशा में यदि कदम बढ़ाए जाते तो समाज के आन्तरिक झगड़े भी स्वत: समाप्त हो जाते।

इस समय देश में जहाँ-तहाँ आतंकवाद की प्रवृत्ति दिखाई देती थी। आर्य समाज का मत था कि आतंकवाद पागलपन का लक्षण है। जहाँ भी यह दृष्टिगोचर हो, उसका दमन किया जाना चाहिए। यदि उसका नाश सम्भव न हो, तो आतंकवादियों की गति वही होनी चाहिए जैसी पागल की होती है। इस प्रकार आर्य समाज ने राष्ट्रसेवा को सत्य और अहिंसा पर आधारित करने का संदेश दिया।

आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द न केवल धार्मिक सुधारक थे, बल्कि राष्ट्र-जागरण के जन्मदाता भी थे। सबसे पहले यदि किसी ने स्वराज्य शब्द का उच्चारण किया तो वह दयानन्द ही थे। देश की दुर्दशा पर आँसू बहाने वाले, रोग की पहचान करने वाले और उसके उपाय बताने वाले भी वही थे। उनकी दिव्य दृष्टि ने भारत की वास्तविक नाड़ी को पहचान लिया था। जिस प्रकार चतुर वैद्य रोग का निदान कर देता है, उसी प्रकार उन्होंने राष्ट्रीय रोग के कारणों को समझा और उसका समाधान प्रस्तुत किया। इसी राष्ट्र-जागरण को स्थायी बनाने के लिए उन्होंने आयज़ समाज की स्थापना की।

कई आर्य नेताओं का यह मत था कि वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों में आर्य समाज को निष्क्रिय नहीं रहना चाहिए। उनका कहना था कि आर्य समाज का कार्यक्रम शुद्ध राष्ट्रवाद पर आधारित है। इसलिए राजनीति से उसका अलगाव सम्भव नहीं। दूसरे पक्ष की भी यही दलील थी कि यद्यपि आर्य समाज एक धार्मिक संस्था है, किन्तु धर्म और राजनीति का सम्बन्ध अटूट है। धर्म केवल पूजा-पाठ तक सीमित नहीं, बल्कि जनजीवन को व्यवस्थित करने वाली व्यापक शक्ति है। इसलिए धर्म से प्रेरित होकर राजनीति करना भी आर्य समाज के स्वभाव और उद्देश्य के अनुरूप है।

❑❑❑